International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 04, No. 03(I), July - September, 2022, pp. 167-173

श्रीमद्भगवद्गीता का शिक्षा दर्शन तथा वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उसकी उपयोगिताः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

सीमा देवी*

प्रस्तावना

शिक्षा अनुभव के पुनर्निर्माण की अविराम प्रक्रिया है जिसका प्रयोजन उसकी सामाजिक अन्तर्वस्तु को और अधिक गहरा तथा विस्तृत बनाना है, साथ ही साथ व्यक्ति को उसमें अंतर्निष्ठ पद्धति का नियंत्रण भी प्राप्त करना है। शिक्षा के माध्यम से आधुनिकीकरण व विकास के लिए वांछित परिवर्तनों को लाया जा सकता है और उसे जनसाधारण तक आसानी से पहुंचाया जा सकता है। पृथ्वी पर ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति के रूप में मानव है। मानव जीवन के मुख्य रूप से दो पक्ष है। शिक्षा सभ्य समाज का महत्वपूर्ण कार्यक्रम माना जाता है। उसे गौरवपूर्ण उच्चतम श्रेणी पर आसीन करती है। शिक्षा व्यक्ति के शारीरिक विकास के साथ–साथ धैर्य, विवेक, सहिष्णुता, बौद्धिक और सामाजिक सफलता आदि मानवोचित गुणों से अलंकृत करते हुए उन्हे युगानुकूल समाज के परिवर्तित परिवेश में सुखमय जीवन जीने की कला का विश्वाश जमाकर आदर्श मानव की श्रेणी में पहुंचा देती है। प्राचीनकाल में किसी समाज की शिक्षा मुख्य रूप से उसके जीवन दर्शन, आकार–प्रकार, अर्थव्यवस्था और शासनतंत्र पर निर्भर करती थी। इस युग में वह मनोविज्ञान और विज्ञान से प्रभावित होती है। आज इन सभी को शिक्षा का मूल आधार माना जाता है।

शिक्षा दर्शन शैक्षिक क्षेत्र के गहनतर समस्याओं का सम्पूर्ण अध्ययन करता है और शिक्षा विज्ञान के लिए उन समस्याओं का अध्ययन छोड़ देता है जो तात्कालिक है और जिनका सर्वोत्कृष्ट अध्ययन वैज्ञानिक योग्यता के मापन की समस्या आदि। विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं के सिद्धान्तों का प्रयोग करके वह शिक्षा की समस्याओं की खोज करने के लिए मार्गदर्शन ग्रहण करता है। इस प्रकार शिक्षा दर्शन का कार्य शुद्ध दर्शन द्वारा प्रतिपादित संघों एवं सिद्धान्तों को शैक्षिक प्रकिया के संचालन में प्रयोग करना है।

शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली शाश्वत एवं चिरन्तन प्रक्रिया है, जब से सृष्टि का सृजन हुआ और मानव ने धराधाम पर अपनी जीवन लीला प्रारम्भ की तभी से शिक्षा ज्ञान स्रोत के रूप में विद्यमान है। ज्ञान एवं जीवन की अजस्र धारा अनादि काल से वर्तमान तक निरन्तर प्रवाहमान है। शिक्षा और चिन्तन ऐसे मानवीय गुण हैं जो उसे अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ और उत्तम बनाते हैं। शिक्षा के द्वारा ही समाज की गतिशीलता और निरन्तरता बनी हुई है। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य ने सभ्यता एवं संस्कृति की चरम–सीमा को छुआ है। यदि किसी राष्ट्र या समाज ने उन्नति के शिखर को प्राप्त किया है, विश्व में अग्रणी बना है या विश्व का नेतृत्व किया है तो इसमें उसकी शिक्षा व्यवस्था का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

किसी राष्ट्र के नवनिर्माण एवं प्रगति की आधारशिला शिक्षा होती है। इसी के ऊपर राष्ट्र के गौरवशाली एवं ऐश्वर्यशाली प्रासाद की भव्य इमारत खड़ी होती है। शिक्षा न केवल पथ प्रदर्शक एवं प्रगति की द्योतक होती है बल्कि यह हमारी सामाजिक एवं सांस्कृतिक विरासत को भी संरक्षित एवं संवर्धित करती है। शिक्षा एक उद्देश्यपूर्ण सामाजिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति के व्यवहारों में परिवर्तन एवं परिमार्जन किया जाता है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य को समाज के सभ्य, योग्य, सुसंस्कृत एवं समायोजनशील प्राणी के रूप में विकसित किया जा सकता है।

* शोधकर्त्री (शिक्षा शंकाय), श्री जगदीश प्रसाद झाबरमल टिब्रेवाला विश्वविद्यालय, राजस्थान।

भारत वर्ष का शैक्षिक अतीत अत्यन्त गौरवशाली और उत्कृष्ट रहा है जब विश्व के अधिकांश देश अशिक्षा एवं अज्ञानता में जीवनयापन कर रहे थे, उस समय देश में एक सुदृढ़ शैक्षिक परम्परा विद्यमान थी। विश्व के प्राचीनतम् साहित्य हमारे देश में ही उपलब्ध है। जब विश्व में शिक्षण ासंस्थाओं की कोई चर्चा भी नहीं थी उस समय हमारे देश में तक्षशिला और नालन्दा जैसे उच्चकोटि के संस्थान विद्यमान थे। विश्व के सबसे प्राचीन संस्थानों के अतिरिक्त विश्व विश्रुत आचार्यों ने इस शैक्षिक संरचना के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। आचार्य वाल्मीकि, वेदव्यास, पाणिनि, आचार्य मनु, अपाला, घोसा, याज्ञवल्क्य, गार्गी, मैत्रेयी आदि श्रेष्ठ आचार्यों ने अपने ज्ञान से अपने शिष्यों का समुचित मार्गदर्शन किया। प्राचीन भारतीय शिक्षा मनीषी इस तथ्य से भली–भांति अवगत थे कि शिक्षा ही मानव में शाश्वत मूल्यों, नैतिकता, चरित्र एवं व्यक्तित्व का विकास करने, समाज के प्रत्येक अंगों का सन्तुलित विकास करने तथा देश की सभ्यता एवं संस्कृति की उन्नति एवं उसे भावी पीढ़ी को हस्तान्तरित करने का सबसे उत्कृष्ट माध्यम है इसलिए उन्होंने शिक्षा की ऐसी सुदृढ़ एवं प्रशंसनीय प्रणाली का विकास किया जिससे न केवल राष्ट्र की उन्नति एवं प्रगति का सम्बल मिला, बल्कि ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में मौलिक चिन्तन का विकास हुआ। अपनी सुदृढ़ शैक्षिक संरचना एवं प्रबुद्ध चिन्तन धारा के कारण तथा राष्ट्र की एकता, अखण्डता, सभ्यता एवं संस्कृति के संरक्षण तथा नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के विकास पर बल देने के कारण भारतीय शिक्षा प्रणाली विश्व में उत्कृष्ट स्थान पर थी और इसीलिए उसे शिक्षा का जगतगुरू कहा जाता है।[1] देश की शैक्षिक श्रेष्ठता में अनेक साहित्यों जैसे वेद, पुराण, उपनिषद, गीता, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन उत्कृष्ट साहित्यों में महर्षि वेदव्यास कृति श्रीमद्भगवद्गीता का उत्कृष्ट स्थान है।

अध्ययन की सैद्धान्ति पृष्ठभूमि

श्रीमद्भगवद्गीता एक बहुत अलौकिक ग्रन्थ है। विश्व साहित्य में इसका अद्वितीय स्थान है। इसकी महिमा अगाध एवं असीम है। विश्व वाङ्गमय में यही एक ऐसा महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसने दर्शन, तत्व विद्या, नीतिशास्त्र और मानवीय आदर्श को अपने चरम पराकाष्ठा पर पहुँचाया है। इसमें दर्शन, धर्म, नीति, भक्ति, न्याय, तर्क, ज्ञान, अज्ञान, पाप, पुण्य, कर्म, ज्ञान, धर्म–अधर्म, स्वधर्म–पराधर्म, कर्तव्य–अकर्तव्य, सत्य–असत्य, शुभ–अशुभ, आत्म–ज्ञान, प्रकृति–पुरूष, ब्रह्म–ईश्वर, पुनर्जन्म, मोह, वर्ण, आश्रम आदि अनेक दार्शनिक समस्याओं का समाधान किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता का अर्थ बहुत ही गम्भीर है। इसका पठन–पाठन, मनन चिन्तन और विचार करने से बड़े ही विचित्र और नये–नये भाव स्फुटित होते हैं, जिससे मन और बुद्धि चकित होकर तृप्त करते आ रहे हैं तथा गीता इस बात का पुरजोर समर्थन करती है कि मनुष्य में मूलतः दैविक शक्ति है। अपनी अद्भूत विशिष्टता, अलौकिकता, दिव्यता और जीवन दृष्टि के कारण गीता आज भी प्रासंगिक एवं आदर्श मानी जाती है। इसके उपदेश एवं शिक्षाएं आज भी उपयोगी एवं प्रासंगिक प्रतीत होती है। शोधकर्त्री द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता में निहित शैक्षिक दर्शन का तात्विक विवेचन कर वर्तमान शिक्षा प्रणाली में इसकी प्रासंगिकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषदों का निचोड़ है, निष्कर्ष है। भगवान श्रीकृष्ण ने अपना सम्पूर्ण सार तत्व अपनी ज्ञान राशि का सार श्रीमद्भगवद्गीता में दिया है। अर्जुन और उनकी अनिश्चिता को आधार कर सम्पूर्ण जिज्ञासु लोक एवं सम्पूर्ण साधक लोक को उन्होंने आलोक प्रदान किया, किन्तु यह तथ्य सर्वथा अवधेय है कि गीता के विषय में एतन्मात्र ही सत्य नहीं है। एतद्तिशायी इससे बढ़कर कुछ और भी वैशिष्ट्य है।

श्रीमद्भगवद्गीता का वैशिष्ट्य

अद्वैतवेदान्त मत से कर्म–काण्ड मुक्ति का साक्षात् साधन न होकर परम्परा साधन होता है। यह व्यक्ति की बुद्धि को शुद्ध करके, उसमें आत्म जिज्ञासा–आत्म विषयक ज्ञान की इच्छा–उत्पन्न करके, उसे आत्मज्ञान के द्वार तक पहुँचा देने का सोपान है। इसी रूप में यह निःश्रेयस का हेतु बनता है। इस बुद्धि–शुद्धि के लिये जो कर्म आवश्यक हैं, वे नित्य और नैमित्तिक रूप से दो प्रकार के होते हैं। न करने पर प्रत्यवाय अर्थात् पाप के साधन बनने वाले सन्ध्यावन्दन और (अञ्च महायज्ञ) आदि कर्म 'नित्य' अर्थात् अवश्य–करणीय कर्म हैं। पुत्र जन्म

तथा पितृ–निधन आदि निमित्त–विशेष से सम्बद्ध जातेष्टि तथा पितृश्राद्ध आदि कर्म नैमित्तिक हैं। बुद्धि–शुद्धि के लिये जैसे ये कर्म करणीय है, वैसे ही नरकादि अनिष्ट लोकों के हेतु भूत ब्रह्म हत्या, स्वर्ण–चौर्य, परस्त्रीगमन आदि निषिद्ध कर्म भी हैं। साथ ही पाप–क्षय के लिये विहित चान्द्रायणादि प्रायश्चित कर्म भी करणीय हैं। नैमित्तिक कर्मों से प्रायश्चित कर्मों का भेद यह है कि जहाँ नैमित्तिक कर्म पुत्र–जन्म इत्यादि निमित्त मात्र के प्राप्त होने पर ही किये जाते हैं, वहीं प्रायश्चित आदि कर्म शास्त्र–विहित कर्मों के न करने तथा निषिद्ध कर्मों के करने जैसे विशेष निमित्तों के प्राप्त होने पर ही पाप–प्रक्षालनार्थ किये जाते हैं। इसमें मनु का प्रमाण है जो इस प्रकार है– अकुर्वन विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन्। प्रसक्तश्रेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः। (मनु0 11/44) अथवा, पापक्षय–मात्र के उद्देश्य से किये जाने वाले कर्म प्रायश्चित कहे जाते हैं, जैसा कि प्रायः पापं विजानीयच्चित्तं तस्य विशोधनम्' इत्यादि स्मृति वचन से स्पष्ट है। श्रुतिस्मृत्युक्त यह समस्त आचार सा कर्म 'धर्म' नाम से व्यवहृत होता है, जैसा कि मनुस्मृति 1/108 में कहा गया है आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च। तस्मादस्मिन् सदा युक्तों नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः।[2]

श्रीमद्भगवद्गीता का दार्शनिक चिन्तन

श्रीमद्भगवद्गीता प्राचीन भारतीय वेदान्त दर्शन की अमूल्य निधि है। इसमें ज्ञान, कर्म एवं भक्ति का अनोखा समन्वय दृष्टिगत होता है। गीता उपनिषद्रूपी गायों से भगवान श्रीकृष्ण द्वारा दुहा गया दुग्धामृत है। भगवान श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्मयोग को, ज्ञान योग आधार माना है। इन्होंने कहा– हे अर्जुन कर्मयोग की परम्परा में अन्तिम फल ज्ञान योग को तुम प्राप्त करोगे। आत्मा में बुद्धि की अचल स्थिति का नाम ही आत्मसाक्षात्कार है। कर्मयोग से धीरे–धीरे 'सांख्य योग' ज्ञान योग की स्थिति में आता है अर्थात् जीवन परमात्मैक्य रूप का ज्ञान होने लगता है। इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा, ब्रह्म, जीवन, जगत आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है।[3]

शिक्षा

शिक्षा शब्द संस्कृत के शिक्ष् धातु से बना है। जिसका अर्थ है सीखना या सीखाना। यह अंग्रेजी भाषा के एजुकेशन शब्द का पर्याय है जो लैटिन भाषा के एजुकेटम शब्द से बना है, जिसका अर्थ है– अन्दर से आगे बढ़ाना। इस प्रकार शिक्षा मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों को बाहर निकालती है। शिक्षा गतिशील सामाजिक प्रक्रिया है जो आजीवन चलती रहती है। शिक्षा मानव जीवन के विकास की वह प्रक्रिया है जिसमें मानव अपने आपको आवश्यकतानुरूप भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक पर्यावरण से अनुकूल बना लेता है।

अरस्तू के अनुसार[4]– शिक्षा मानवीय शक्ति का, विशेष रूप से मानसिक शक्ति का विकास करती है, जिससे मानव परम सत्य, शिव और सुन्दर का चिन्तन करने के योग्य बन सके।

डॉ0 राधाकृष्णन के अनुसार[5]– शिक्षा के प्रति संतुलित दृष्टिकोण का विकास किया जाना चाहिए, मानसिक प्रशिक्षण के साथ–साथ कल्पना शक्ति और मनोभावों को निर्मल बनाया जाना चाहिए। जिज्ञासु मस्तिष्क, अर्न्तज्ञानी हृदय, चेतनाशील आत्मा और खोज करने वाले विवेक का विकास किया जाना चाहिए। केवल भौतिक ही नहीं आध्यात्मिक शक्तियों के विकास पर भी समान बल देना चाहिए, सौन्दर्यात्मक एवं आध्यात्मिक उत्थान मनुष्य के निर्माण में योगदान देता है। संक्षेप में शिक्षा को मनुष्य एवं समाज का निर्माण करना चाहिए।

उक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा मानव जीवन के सर्वांगीण विकास हेतु एक आवश्यक पहलू है, इसके द्वारा उसके शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक गुणों का पूर्ण विकास होता है। शिक्षा से व्यक्ति के दृष्टिकोण में व्यापकता, चिन्तन में नवीनता एवं व्यवहार में पूर्णता दृष्टिगत होती है। शिक्षा बालक की जन्मजात शक्तियों का विकास करती है। वह उसे इस योग्य बनाती है कि वह अपने पर्यावरण के साथ अनुकूलन कर सके, शिक्षा चरित्र का विकास करती है तथा व्यक्तिगत हित के साथ–साथ समाज, राष्ट्र और विश्व कल्याण में सहायता देती है। यह सामाजिक धरोहरों का संरक्षण, हस्तान्तरण एवं विकास में सहायता करती है। यह बालक में राष्ट्रीय एकता और अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव का विकास करने में सहयोग प्रदान करती है।

दर्शन

दर्शन शब्द संस्कृत भाषा के दृश् धातु से बना है, जिसका अर्थ है देखना। इसकी व्युत्पत्ति के अनुसार– 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' के अनुसार जिससे सत्य का दर्शन किया जाए और जीवन, जगत तथा ईश्वर से सम्बन्धित प्रश्नों का सत्य उत्तर प्राप्त करने का प्रयास किया जाय, वही दर्शन है। दर्शन शब्द अंग्रेजी के फिलॉसफी शब्द से बना है जो ग्रीक भाषा के दो शब्दों फिलास+सोफिया से बना है। फिलास का अर्थ है–प्रेम तथा सोफिया का अर्थ है– विद्या या ज्ञान अर्थात् ज्ञान से प्रेम या ज्ञान की खोज की कला को दर्शन कहते हैं।[6]

प्लेटों के शब्दों में[7]– जो व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त करने तथा नई–नई बातों को जानने के लिए रूचि प्रकट करता है और जो कभी संतुष्ट नहीं होता उसे दार्शनिक कहा जा सकता हैं दर्शन वह अमूर्त चिन्तन है जिसके द्वारा आत्मा–परमात्मा, जीव–जगत, जन्म–मृत्यु तथा प्रकृति आदिका रहस्य मालूम किया जा सकता है।

हक्सले के अनुसार[8]– मनुष्य अपने जीवन दर्शन तथा संसार के विषय में अपनी–अपनी धारणाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करते हैं। यह बात अधिक से अधिक विचारहीन व्यक्तियों के विषय में भी सत्य है कि बिना दर्शन के जीवन को व्यतीत करना सम्भव है।

इस प्रकार दर्शन जीवन के विभिन्न सत्यों की खोज करता है, यह जीवन के मूल्यों, आदर्शों एवं सिद्धान्तों का निर्धारण करता है तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण व अभिवृत्तियों का निर्माणकर्ता है। यह व्यक्ति को स्वतंत्र चिन्तन की प्रेरणा प्रदान करता है।

शिक्षा–दर्शन

शिक्षा दर्शन, दर्शन की वह शाखा है जिसमें शिक्षा की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन कर उनका समाधान प्रस्तुत किया जाता है और शिक्षा की प्रक्रिया के स्वरूप को निर्धारित किया जाता है। शिक्षा दर्शन के अन्तर्गत शिक्षा के विभिनन अंगों जैसे– शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियां, अनुशासन, शिक्षक एवं शिक्षार्थी आदि के सम्बन्ध में विचार कर उनका हल प्रस्तुत किया जाता है। इन्साइक्लोपीडिया ऑफ एजुकेशनल रिसर्च में शिक्षा दर्शन के विषय में कहा गया है कि सामान्य दर्शनशास्त्र में अन्वेषण या अनुसंधान का उद्भव तब होता है जब मनुष्य अपने अनुभवों पर विवेचन करने लगता है।[9]

किलपैट्रिक के अनुसार[10]– शिक्षा दर्शन विद्यालय के लोगों को उद्देश्यों की प्राप्ति तथा इससे भी उच्च उद्देश्यों की तैयारी के लिए आवश्यकत शिक्षा की कार्यविधियों का ज्ञान कराता है।

जॉन ड्यूबी के अनुसार[11]– शिक्षा दर्शन सामान्य का एक साधारण सम्बन्धी ही नहीं है अपितु दार्शनिकों ने अब तक यही माना है कि दर्शन का महत्वपूर्ण पक्ष है क्योंकि शिक्षा प्रक्रिया द्वारा ही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

उक्त परिभाषा से स्पष्ट होता है कि शिक्षा दर्शन शैक्षिक समस्याओं के तार्किक चिन्तन के द्वारा समाधान प्रस्तुत करने का माध्यम हे, यह व्यक्तिपरक होता है, शिक्षा दर्शन का कार्य निर्देशन या दिशा प्रदान करना है। यह शैक्षिक समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से तथा कलात्मक अनुप्रयोगों के द्वारा समाधान खोजने का सुन्दर माध्यम है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व

शोधकर्त्री अपने अध्ययन काल से ही भारतीय शैक्षिक प्रणाली के विकास क्रम एवं इसमें आवश्यकतानुरूप परिवर्तन एवं परिमार्जन करने हेतु विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों एवं दार्शनिकों के विचारों की उपयोगिता ज्ञात करने के प्रति उत्साहित रही है। देश की शैक्षिक प्रणाली का ध्रातलय निरीक्षण एवं समस्याओं के मूल कारणों को जानने एवं इसका निराकरण करने की आवश्यकता प्रारम्भ से ही थी, किन्तु अद्यावधि तक इस दिशा में समुचित दृष्टिकोण का विकास नहीं हो पाया है। किसी भी राष्ट्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण उसके देशवासी और सबसे बड़ी शक्ति उसकी वास्तविक गुणवत्ता होती है। राष्ट्र का निर्माण उसके नागरिकों से होता है और नागरिकों के व्यक्तित्व का निर्माण होता है–शिक्षा से। अतः शिक्षा ही राष्ट्र के निर्माण का मूल आधार है,

इसके आलोक में राष्ट्र विशेष की शिक्षा प्रणाली भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती है। कोई शिक्षाविद् या दार्शनिक ही विश्व के ऐसे भाग में रहकर ऐसा चिन्तन कर सकता है जिसकी प्रससंगिकता परिवर्तित सन्दर्भ में अन्यत्र हो सकती है।

प्राचीन काल में भारत की शिक्षा का स्वरूप आध्यात्मिक था। शिक्षा के दो प्रकार थे[12] –परा तथा अपरा। परा विद्या मोक्ष प्राप्ति का साधन थी और इसका लक्ष्य आध्यात्मिक एवं नैतिक पक्षों पर बल देना था। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना था। धीरे–धीरे शिक्षा के उद्देश्यों में परिवर्तन होता गया और शिक्षा केवल व्यावसायिक पक्ष तक सीमित हो गयी। इससे समाज में प्रतिद्वन्दिता बढ़ी और समाज में भ्रष्टाचार व अनैतिकता में वृद्धि हुई तथा देश की शिक्षा व्यवस्था की गुणवत्ता में ह्रास हुआ। वर्तमान भारतीय शिक्षा व्यवस्था की स्थिति अत्यन्त दयनीय एवं विडम्बना पूर्ण है। शिक्षा का विस्तार जितनी तीव्रगति से हुआ है, नैतिक, चारित्रिक, आध्यात्मिक लक्ष्यों से उतनी ही दूरी हो गयी है। ऐसी स्थिति में देश के महान दार्शनिकों, विचारकों एवं शिक्षाशास्त्रियों के चिन्तन एवं विचारों के माध्यम से छात्रों के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के सन्दर्भ में नवीन मन्थन एवं प्रयास किये जाने की आवश्यकता महसूस की गयी।

उक्त विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि मानवीय मूल्यों एवं ज्ञान, आचरण तथा संस्कृति की पुर्नस्थापना, सत्य, अहिंसा, सदाचार आदि गुणों के विकास तथा भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के मध्य सामंजस्य स्थापित करने तथा निष्काम कर्म योग एवं भोग रहित जीवन मूल्यों की स्थापना में श्रीमद्भगवद्गीता का अद्वितीय स्थान है। इसका महत्व न केवल आध्यात्मिक दृष्टि से बल्कि शैक्षिक दृष्टि से भी अनुकरणीय है। श्रीमद्भगवद्गीता को आधार कर वर्तमान शैक्षिक प्रणाली में जीवनोपयोगी गुण तथा भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की पुनर्स्थापना तथा राष्ट्र की प्रगति हेतु इसके शिक्षा–दर्शन के अध्ययन की नितान्त आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त शोधकर्त्री की वैयक्तिक रूचि, श्रीमद्भगवद्गीता पर साहित्य की उपलब्ध तथा इसकी वर्तमान प्रासंगिकतापर शोध कार्यों की अल्पता के कारण प्रस्तुत विषय पर शोध अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है तथा वर्तमान शिक्षा प्रणाली को सवंर्धित करने के लिये प्रस्तुत विषय पर शोधकार्य किये जाने की आवश्यकता है।

शोध विधि

किसी भी प्रासंगिक शोध अध्ययन के लिए अनेक शोध विधियाँ प्रयोग में लायी जा सकती है। इन विधियों का प्रयोग शोध अध्ययन की प्रकृति पर निर्भर करता है। अध्ययन की प्रकृति के आधार पर मुख्यतः निम्नलिखित विधियाँ प्रयोग में लायी जाती है[13] :–

- ऐतिहासिक अनुसंधान विधि।
- वर्णनात्मक अनुसंधान विधि।
- प्रयोगात्मक अनुसंधान विधि।

शोधकर्त्री का प्रस्तुत शोध कार्य दार्शनिक एवं ऐतिहासिक शोध के अन्तर्गत आता है, इसकी प्रमुखतः विधि ऐतिहासिक है जिसका आधार दार्शनिक है। जिसके अन्तर्गत किसी दार्शनिक तत्व, महान चिन्तक या शिक्षाविद् के शैक्षिक विचारों का विश्लेषणात्मक एवं आलोचनात्मक अध्ययन किया जाता है। सम्बन्धित विचारक के लेखों, ग्रन्थों भाषणों एवं अन्य उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर ज्ञात विचारों या चिन्तन को एक विशेष परिप्रेक्ष्य में रखना इस प्रकार के अनुसंधान का मुख्य विषय है। शोधकर्त्री के शोध विषय श्रीमद्भगवद्गीता के शिक्षा दर्शन का वर्तमान शिक्षा प्रणाली में प्रासंगिकता एक विश्लेषणात्मक अध्ययन भी दार्शनिक विधिक अन्तर्गत आने वाला विषय है। जिसमें महान दार्शनिक एवं वेदान्ती महर्षि वेदव्यास द्वारा चरित महाभारत के भीष्मपर्व से उद्धृत श्रीमद्भगवद्गीता का विश्लेषणात्मक अध्ययन करके वर्तमान शिक्षा प्रणाली में इसकी आवश्यकता एवं उपयोगिता को ध्यान में रखकर इस विषय की प्रासंगिकता को स्पष्ट करना शोधकर्त्री का मुख्य विवेच्य विषय है। इसके लिए शोध अध्ययन की ऐतिहासिक एवं दार्शनिक विधि का प्रयोग किया गया है।

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण

सम्बन्धित साहित्य से तात्पर्य अनुसंधान की समस्या से सम्बन्धित उन सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञानकोषों, पत्र–पत्रिकाओं, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध प्रबन्धों एवं अभिलेखों से है जिसके अध्ययन से शोधकर्ता को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपनी समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण, अध्ययन की रूपरेखा तैयार करने एवं कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है।[14]

डब्लू0 आर0 बोर्ग के अनुसार[15]– ''किसी भी क्षेत्र का साहित्य उस आधारशिला के समान है जिस पर सम्पूर्ण भावी कार्य आधारित होता है। यदि सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण द्वारा इस नींव को दृढ़ नहीं कर लेते तो हमारे कार्य की प्रभावहीन एवं महत्वहीन होने की सम्भावना है अथवा यह पुनरावृत्ति भी हो सकती है।''

सम्बन्धित शोधकार्य

बनर्जी, एस0 पी0[16] ने 'मूल्य शिक्षा के सन्दर्भ में भारतीय दर्शन, संस्कृति एवं समकालीन आवश्यकतायें' नामक शोध शीर्षक पर अध्ययन किया। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य भारतीय संस्कृति के अध्ययन से समकालीन आवश्यकताओं के सन्दर्भ में मूल्यों का विकास का अध्ययन करना था। इस अध्ययन में उन्होंने पाया कि भारतीय संस्कृति वास्तव में भारतीय मूल्यों की संवाहक है जिसके सम्यक अध्ययन से मूल्य का विकास होता है। भारतीय तत्कालीन आवश्यकताओं के सन्दर्भ में भारतीय संस्कृति मूल्यों के वर्धन में प्रभावी एवं उपयोगी सिद्ध हुई है।

सिंह, सुनीता[17] ने श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक निहितार्थ नामक शोध शीर्षक से शिक्षा शास्त्र विषय में शोध अध्ययन किया। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक तत्वों का वर्तमान परिदृश्य में प्रासंगिकता का अध्ययन करना था। इस अध्ययन में उन्होंने पाया कि श्रीमद्भगवद्गीता के वर्णित पुरूषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति, ज्ञान–विज्ञान, अध्यात्म, दर्शन, शिक्षा, कला, सामाजिक एवं संस्कृति आदि का परिशीलन तथा नैतिकता, विचार, रूचि, क्षमता आदि से सम्बन्धित तत्व वर्तमान मनोविज्ञान एवं शैक्षिक विचारों से प्रासंगिक एवं सामयिक है।

पाण्डेय, कनकलता[18] ने 'सदसाहित्यों अनुशीलन में मूल्यों की प्रासंगिकता' नामक शोध पत्र के माध्यम से मूल्यों की महत्ता स्पष्ट करते हुए कहा है कि व्यक्ति के कर्तव्य, मूल्यों से निर्देशित एवं संचालित होते हैं। मानव जीवन के आठ मूल्य यथा–सामाजिक मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य, आध्यात्मिक मूल्य, ज्ञान मूल्य, पर्यावरण मूल्य, विधि पालन मूल्य, श्रेष्ठतत्व मूल्य, तथा देश भक्ति मूल्य का आधार मानव के मूल्य कर्तव्य है जिनके आधार पर इनकी कल्पना की गयी है।

निष्कर्ष

शिक्षा का दर्शन शिक्षा सम्बन्धी अनेक प्रश्नों का उत्तर खोजता है। इस सम्बन्ध में डॉ. एस.एस. माथुर का कथन समीचीन है कि ''शिक्षा का दर्शन, शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का दर्शन की दृष्टि से विवेचन करता है।'' शिक्षा–दर्शन प्रायः जीवन दर्शन होता है। जीवन दर्शन और शिक्षा दर्शन के मध्य कोई पार्थक्य नहीं किया जा सकता है। कोई शिक्षा–दर्शन मूलतः जीवन के आदर्शों एवं लक्ष्यों के संदर्भ में शिक्षा के उद्देश्यों के प्राप्तार्थ शैक्षिक कार्यक्रम और परीक्षा एवं शैक्षिक संगठनों का मूल्यांकन, विषय–वस्तु विधियों, अध्यापक निर्माण, मापन इत्यादि से सम्बंधित होता है। प्राचीन भारतीय दर्शन में जीवन का सच्चा सुख, सच्चा ज्ञान, श्रेष्ठ आचरण, जीवन के प्रति निर्मल दृष्टि एवं उच्च आदर्श निहित है। अतः भारतीय प्राचीन दर्शन में निहित शैक्षिक तत्व वर्तमान शिक्षा प्रणाली में प्रासंगिक हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पं0 श्रीराम शर्मा एवं प्रणव पॉड्याः शिक्षण प्रक्रिया में सर्वांगपूर्ण परिवर्तन की आवश्यकता, प्रकाशक युग निर्माण योजना गायत्री तपोभूमि मथुरा पृ0 सं0 7–9
2. डॉ0 आद्या प्रसाद मिश्रः श्रीमद्भगवद्गीता, इलाहाबाद अक्षयवट प्रकाशन, उपोद्घात, पृ0सं0–7–8

3. डॉ0 गिरीश पचौरीः शिक्षा दर्शन, मेरठ, आर लाल बुक डिपो, पृ0सं0 319–25
4. डॉ0 लक्ष्मी लाल के0ओडः शिक्षा दर्शन की पृष्ठभूमि, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ0सं0–1–2
5. डॉ0 गिरीश पचौरीः शिक्षा दर्शन, मेरठ, आर लाल बुक डिपो, पृ0सं0–5
6. डॉ0 गिरीश पचौरीः शिक्षा दर्शन, मेरठ, आर लाल बुक डिपो, पृ0सं0–6
7. डॉ0 राम शकल पाण्डेयः शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन, पृ0सं0–2–3
8. डॉ0 राम शकल पाण्डेयः शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन, पृ0सं0–4
9. डॉ0 राम शकल पाण्डेयः शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन, पृ0सं0–4
10. डॉ0 गिरीश पचौरीः शिक्षा दर्शन, मेरठ, आर लाल बुक डिपो, पृ0सं0–24–25
11. डॉ0 गिरीश पचौरीः शिक्षा दर्शन, मेरठ, आर लाल बुक डिपो, पृ0सं0–25
12. डॉ0 गिरीश पचौरीः शिक्षा दर्शन, मेरठ, आर लाल बुक डिपो, पृ0सं0–25
13. डॉ0 कर्ण सिंहः भाषा शिक्षण, आलोक प्रकाशन लखनऊ पृ0सं0–86
14. पारस नाथ रायः अनुसंधान परिचय, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन–3, 2002 पृ0सं0–95
15. पारस नाथ रायः अनुसंधान परिचय, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन–3, 2002 पृ0सं0–96
16. एस0पी0 बनर्जीः वैल्यूज रिलीवेन्ट टू इण्डियन कल्चर एण्ड अवर कन्टेमपरेरी नीड्स अनपब्लिसड सेमीनार पेपर।
17. सुनीता सिंहः ''श्रीमद्भगवद्गीता के शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक निहितार्थ'' पी–एच0डी0, शिक्षाशास्त्र, डा0 राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद।
18. कनकलता पाण्डेयः ''सद्साहित्यों के अनुशीलन में मूल्यों की प्रासंगिकता'' अप्रकाशित शोध पत्र, सेमीनार, बी0एच0यू0, वाराणसी।
19. अगम लालता प्रसाद द्विवेदीः वैदिक शिक्षा के परिस्थितिकीय आधार, आगरा, एच0पी0 भार्गव बुक हाउस।
20. अग्निहोत्रीः भारतीय शिक्षा–दशा और दिशा, मेरठ, केदारनाथ रामनाथ एण्ड कम्पनी
21. आशुतोष एवं शिवमोहन पाण्डेयः राष्ट्रीय विचारधारा के प्रवर्तक, इलाहाबाद, अग्रवाल प्रेस, 1976
22. ओड, एल0के0ः शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1976
23. ओड, एल0के0ः शिक्षा के नूतन आयाम, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
24. ओझा, कमलापतिः देश विदेश के महान शिक्षक, वाराणसी, नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स प्रकाशन
25. कबीर, हुमायूँ: स्वतंत्र भारत में शिक्षा, दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्स,
26. कबीर, हुमायूँ: इण्डियन फिलॉसफी ऑफ एजूकेशन, बाम्बे, एशिया पब्लिसिंग हाउस
27. कपिल, एच0के0ः अनुसन्धान विधियां, आगरा, भार्गव बुक हाउस
28. कर्लिंगर, एफ0एम0ः अन्वेशन ऑफ विहैवियरल रिसर्च, न्यूयार्क, हार्टग्रीन वर्ल्ड एण्ड विस्टन

❖◆❖